

## सेना (अनचाहे ही) संक्रमण के हालात में An Army in a (Reluctant) Transition

अनित मुखर्जी  
Anit Mukherjee  
December 16, 2013

हाल ही में भारतीय सेना सभी गलत कारणों से समाचारों की सुर्खियों में बनी रही. जनरल वी.के.सिंह के विवादग्रस्त कार्यकाल, अफसरों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच झड़पों की खबरों, भ्रष्टाचार के आरोपों और नियंत्रण रेखा पर सैनिक कार्रवाई के दौरान सोते हुए सैनिकों के किस्सों ने मीडिया का ध्यान खींचा तो जरूर, लेकिन किसी ने इसे पसंद नहीं किया. दिलचस्प बात तो यह है कि प्रधानमंत्री ने इन सभी मुद्दों में से सिर्फ एक मुद्दे को ही उजागर करना ठीक समझा और वह मुद्दा था अफसरों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच के संबंधों का. अपने वरिष्ठतम सैनिक कमांडरों को संबोधित करते हुए उन्होंने कुछ अलग ढंग से सपाट शब्दों में कहा: “आप अपने वर्दीधारी पुरुषों और महिलाओं की ज़िंदगी और कल्याण के लिए ज़िम्मेदार हैं. कमांडर के तौर पर आपको पक्के सिद्धांतों के प्रति वफ़ादारी की भी खुद ही समीक्षा करनी होगी और उसके लिए अपना उदाहरण सामने रखना होगा. जब संस्थाएँ जीर्ण-शीर्ण होने लगती हैं तो उनमें सुधार लाने के लिए पहल करना ज़रूरी हो जाता है.” वस्तुतः दूसरी तमाम संस्थाओं का तरह भारतीय सेना में भी सुधार की नितांत आवश्यकता है, लेकिन बिल्कुल भी बर्दाश्त न करने अर्थात् “ज़ीरो टॉलरेंस” की वर्तमान नीति के कारण इन जटिल समस्याओं को सुलझाते हुए एक विचित्र- सी प्रतिक्रिया सामने आती है. बजाय इसके, ज़रूरत इस बात की है कि हम अपनी कुछ परंपराएँ को तोड़ें और सैन्य समाजविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को अधिक पारदर्शी व तार्किक बनाएँ. लेकिन यह साफ़ नहीं है कि सेना इन परिवर्तनों की चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए अभी तैयार है या नहीं. कहीं ऐसा तो नहीं कि ये परिवर्तन उस पर जबरन लागू करने होंगे.

अफसरों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच की झड़पों की वारदातों को मीडिया में अक्सर सनसनीखेज तरीके से पेश किया जाता रहा है. हाल ही में कुछ ऐसी “वारदातें” हुईं, जब एक तोपखाने का यूनिट लेह में प्रशिक्षण के लिए तैनात था और दो बख्तरबंद यूनिट साम्बा और गुरदासपुर में तैनात थे. एक वारदात तो कुछ समय पहले तब हुई जब पैदल सेना का एक यूनिट मेरठ में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा था. चिंता की बात तो यह है कि भिड़ंत की ये वारदातें उस दौरान हुईं जब अफसरों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच संबंधों का महत्व सबसे ज़्यादा रहता है. साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी यूनिटों की तैनाती उन्हीं स्थलों पर की गयी थी जहाँ युद्ध की स्थिति नहीं थी. इससे उन तमाम लोगों के आरोपों का खंडन हो जाता है जो यह दोषारोपण कर रहे थे कि ये वारदातें तब हुई थीं जब ये लोग लंबे समय तक दबाव में रहकर जवाबी कार्यवाही में लगे हुए थे या फिर दूसरी ऑपरेशनल ड्यूटी पर लगे थे. राज्यसभा में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए रक्षामंत्री ए. के. ऐन्थनी ने इन वारदातों को “भूल” की श्रेणी में ही रखा और बताया कि कमांडरों को निर्देश दे दिये गये हैं कि इन सभी मामलों में “ज़ीरो टॉलरेंस” की वर्तमान नीति को ही अपनाएँ. हो सकता है कि ये वारदातें “भूल” की श्रेणी की ही रही हों, लेकिन दिक्कत तो यही है कि हम असली वजह तो कभी-भी नहीं जान पाएँगे. मानवेंद्र सिंह इस गलती को सेना की “कवर-अप कल्चर” अर्थात् पर्दा डालने की संस्कृति कहते हैं. सीधे तरीके से कहा जाए तो अपनी रेजिमेंट के गौरव और वफ़ादारी की झूठी शान के नाम पर कितनी ही वारदातों की ईमानदारी से जाँच ही नहीं की जाती. इससे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जाँच न्यायालय (कोर्ट ऑफ़ इन्क्वायरी) के लिए आदेश तो हर हाल

में दिये जाते हैं लेकिन उनके जाँच परिणामों को व्यापक रूप में प्रचारित नहीं जाता। इसका परिणाम यह होता है कि वारदात के बाद बिल्कुल बर्दाश्त न करने अर्थात् “ज़ीरो टॉलरेंस” की नीति तो ठीक है, लेकिन समाज और रवैये में व्यापक परिवर्तन के बीच सेना की संरचनागत समस्याओं को सुलझाने में कोई मदद नहीं मिलती।

अधिकारियों की भारी कमी वह सबसे पहली समस्या है, जिसे व्यापक तौर पर मान भी लिया गया है। इस समय लगभग 11,000 अधिकारियों की कमी है और लगभग ये सभी अधिकारी कर्नल के रैंक से नीचे के अधिकारी हैं। इसका अर्थ यह है कि इन यूनिटों को चलाने वाले अधिकारियों की संख्या बहुत कम है। यही कारण है कि थोड़े-से अधिकारियों की तैनाती अक्सर कई यूनिटों में एक-साथ की जाती है। इसके परिणामस्वरूप कनिष्ठ अधिकारी पहले की तरह अब अपने मातहत कर्मचारियों के साथ अधिक समय नहीं बिता पाते। दोनों के बीच आधिकारिक और सामाजिक संवाद में भी कमी आ गयी है- फिर चाहे प्रशिक्षण का समय हो या रोज़मर्रा की हाज़िरी हो या परेड हो, अधिकारियों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच रिश्ते अब उतने प्रगाढ़ नहीं रहे। इस तथ्य को रक्षा मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने भी संसद की स्थायी समिति के सामने स्वीकार किया है और अपने साक्ष्य में कहा है कि “अधिकारियों की कमी के कारण कनिष्ठ अधिकारियों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच जिस तरह का संवाद होना चाहिए, वह नहीं हो पा रहा है।” इस समस्या से निपटने का एक तरीका तो यह है कि कनिष्ठ अधिकारियों को बटालियन या कंपनी के किसी भी मुख्यालय में तब तक तैनात नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वे कम से कम तीन वर्ष की सेवा ऑपरेशनल रूप से पूरी न कर लें। इसके बजाय उन्हें प्लाटून स्तर की गतिविधियों में संलग्न किया जाना चाहिए ताकि वे अधिक से अधिक समय अपने मातहत कर्मचारियों के साथ बिता सकें और दोनों ही पक्ष एक दूसरे को जान सकें। इस समस्या से निपटने का दूसरा तरीका यह हो सकता है कि आर्मी कैडेट कॉलेज के रूट से आने वाले कमीशंड अधिकारियों की संख्या बढ़ायी जाए ताकि अधिक से अधिक योग्य अधिकारियों को सेना में भर्ती किया जा सके। ये मामले तब और भी जटिल हो जाते हैं जब अधिकारियों की कमी के कारण स्टाफ़ इयूटी के लिए कैरियरिस्ट और सक्षम अधिकारियों की माँग और भी बढ़ जाती है और उसके बाद और भी कम अधिकारी बटालियन या रेजिमेंट संबंधी सैनिक-कार्यों के लिए उपलब्ध हो पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप युवा अधिकारियों के लिए पर्याप्त संख्या में अनुकरणीय उदाहरण नहीं हैं जिनसे प्रेरणा लेकर वे आगे का अपना मार्ग “प्रशस्त” कर सकें।

अधिकारियों की कमी का प्रभाव बिना कल्पनाशीलता के बनायी गयी मानव संसाधन संबंधी विकास नीतियों और शांतिकाल के दौरान सैनिकों पर लादे गये अन्य कामों के दबाव के कारण दुगुना हो गया है। दुर्भाग्यवश भारतीय सेना की अधिकारी प्रबंधन प्रणाली को मुख्यतः ऊर्ध्वोन्मुखी मोबाइल कमांड स्ट्रीम के अनुरूप बनाया गया है। कुछ हद तक यह सेना जैसे पिरामिडनुमा संगठन के लिए आवश्यक भी है, लेकिन विविध रुचियों वाले ‘कट’ न लेने वाले अधिकारियों को सैन्य इतिहास और प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक रुचि से जुड़े विषयों के अध्ययन में प्रवृत्त करके बहुत कुछ किया जा सकता है। ऐसे उपायों से रैंक कैरियरवाद को कम करने में मदद मिल सकती है, जिसे अक्सर सत्यनिष्ठा और वफ़ादारी के घटते स्तर का कारण माना जाता रहा है। इसके अलावा, केवल कैरियर के कारण ही मेजर जनरल जैसे अधिकारियों को मात्र पंद्रह महीने के छोटे- से कार्यकाल के लिए ही डिविज़न कमांडर के पद पर तैनात किया जाता रहा है। इससे ऑपरेशनल दृष्टि से तो कोई लाभ नहीं होता, बल्कि सामान्य अधिकारियों को अपने कैरियर की संभावनाओं को उज्ज्वल बनाने के लिए अंधाधुंध तरीकों को अपनाने में मदद ज़रूर मिलती है। इससे यूनिट स्तर पर भारी दबाव पड़ता है। इसलिए यह कोई असामान्य बात नहीं है कि अनेक सैनिक युद्ध न होने वाले शांत अर्थात् ‘पीस स्टेशनों’ पर ही अपनी तैनाती पसंद करते हैं। अगर हम अधिकारियों की कमी,

प्रतिस्पर्धा वाले कैरियर के ढाँचे और शांतिकाल के दौरान निरंतर चलने वाली सैन्य गतिविधियों को एक साथ देखें तो पाएँगे कि इनका भारी दबाव यूनिट और सब-यूनिट स्तर पर पड़ता है।

अफसरों और उनके मातहत कर्मचारियों के बीच के तनाव का एक और कारण है, पुरानी सहायक संस्कृति, जिसके अंतर्गत सैनिकों की सेवा का उपयोग अधिकारियों की प्रशासनिक ड्यूटी के निर्वाह के लिए किया जाता है। इस प्रथा का समर्थन करने वाले इसका बचाव यह कहते हुए करते हैं कि यह प्रथा 'बडी' प्रणाली का ही विस्तार है, जिसमें सैनिक एक दूसरे का ख्याल रखते हैं। वस्तुतः 'बडी' प्रणाली के कारण ही फ़ील्ड में अधिकारी निजी प्रशासन और आराम की ओर से निश्चिंत होकर ऑपरेशनल जिम्मेदारियों पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर पाते हैं। इसलिए यह बेहद ज़रूरी है कि यह प्रथा बनी रहे और यह भी उल्लेखनीय है कि फ़ील्ड से इस बात को लेकर झड़पों की बहुत ही कम खबरें आती हैं। लेकिन बिना युद्ध वाले क्षेत्रों अर्थात् 'पीस स्टेशनों' से सहायकों के दुरुपयोग और झड़पों को लेकर बहुत-सी खबरें आती रहती हैं, भले ही इसमें दोष किसी का भी क्यों न हो, अधिकारियों की पत्नियों का या फिर परिवार के अन्य सदस्यों का। जहाँ तक सहायकों के आधिकारिक ड्यूटी चार्टर का संबंध है, उन्हें केवल ऑपरेशन संबंधी और तकनीकी कार्य करने के लिए ही कहा जा सकता है। उन्हें कोई टहलुआ किस्म का काम करने के लिए नहीं कहा जा सकता। लेकिन असल में तो वे हर प्रकार का काम करते हैं। इस संबंध में जब सेना के किसी प्रतिनिधि से रक्षा संबंधी स्थायी समिति ने यह कहा कि जवानों को अधिकारियों के घर पर काम करते हुए पाया गया है तो उसका उत्तर और भी चौंकाने वाला था: "वे तो यह काम अपने अधिकारियों के प्रति सम्मान के कारण करते हैं।" ऐसे जटिल औचित्य को अगर एक तरफ़ कर दिया जाए तो भी इस प्रथा का समर्थन करने वाले अधिकारियों को इस सीधे-से सवाल का जवाब देना ही होगा: यदि वे सेना में लड़ाकू सैनिक के रूप में भर्ती होते तो उनमें से कितने अधिकारी युद्ध न होने वाले पीस स्टेशन पर सहायक के रूप में आगे बढ़कर काम करने के लिए तैयार होते? इस प्रश्न का उत्तर नेतृत्व के पहले सिद्धांत से जोड़कर दिया जाना चाहिए: नेतृत्व करने वाला व्यक्ति किसी दूसरे को कोई ऐसा काम करने के लिए नहीं कह सकता जिसे वह स्वयं करने के लिए तैयार न हो। इसलिए नीतिगत आधार यही हो सकता है कि फ़ील्ड में अर्थात् युद्ध क्षेत्र में सहायकों की प्रथा को जारी रखा जाए और पीस स्टेशनों पर इसे बंद कर दिया जाए। वास्तव में कुछ समय पहले असैनिक लोगों को सहायकों के रूप में भाड़े पर लेने से संबंधित सेना के अंदरूनी अध्ययन के आधार पर कुछ चर्चा भी हुई थी। निश्चय ही यह उपाय उस समय सामने आया था जब ए.के. ऐंथनी ने सेना पर सहायकों की प्रथा पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया था। दुर्भाग्यवश अपने अन्य अनेक सुझावों की तरह रक्षा मंत्री इस सुझाव को भी लागू नहीं करा पाए।

सैन्य समाजविज्ञान के क्षेत्र में कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर सेना को विचार करना चाहिए। जैसे-जैसे भारतीय समाज बदल रहा है, संयुक्त परिवार जैसे सुरक्षा तंत्र धीरे-धीरे तिरोहित होते जा रहे हैं। इसी तरह टेलीविज़न पर सामंती वरिष्ठ अधिकारियों पर लगने वाले भ्रष्टाचार के आरोपों और जीर्ण-शीर्ण संस्थाओं पर होने वाली चर्चाओं को लंगर और बैरकों में भी ध्यानपूर्वक सुना जाने लगा है। इसके अलावा, अधिकारियों और सैनिकों दोनों की ही अपेक्षाओं में बदलाव भी आने लगा है। स्त्रियों के प्रति सेना के रुख का अंदाज़ा इसीसे हो जाता है कि उन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा महिलाओं के लिए अलग-से स्थायी कमीशन बनाने के आदेश को भी चुनौती दे दी। यह विषय तो अलग है, लेकिन इससे स्त्रियों के प्रति सेना की द्वेष-भावना का पता चलता है। इस मामले में जलसेना और वायुसेना ने अधिक प्रगतिशील रुख अपनाया है। जैसे-जैसे भारतीय समाज बदलता जाएगा, वैसे-वैसे ही असैनिक समाज, राजनीतिज्ञों और सैन्य प्रशासन के ऐसे मामलों के बारे में जानने की उत्सुकता और भूख भी बढ़ती जाएगी। इन तमाम गतिविधियों के कारण सेना को चाहे - अनचाहे बदलना तो होगा ही। सबसे अच्छा उपाय तो यही होगा कि

सेना सैन्य समाजविज्ञान के क्षेत्र को खुला छोड़ने के लिए तैयार हो जाए और इस बारे में आगे बढ़कर समाज-विज्ञानियों,मानसिक स्वास्थ्य - कर्मियों और मानव संसाधन विशेषज्ञों की मदद लेना शुरू कर दे. भले ही यह कदम मामूली-सा होगा, लेकिन दूर तक के सफ़र के लिए यह एक पुल का काम करेगा.

*अनित मुखर्जी नानयांग प्रौद्योगिकीय विश्वविद्यालय के एस. राजरत्नम् अध्ययन विद्यालय (आरएसआईएस) में सहायक प्रोफेसर हैं और 'कैसी' के पूर्व पोस्टडॉक्टरल फ़ेलो हैं.*

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>